जैन
पथप्रदर्शक
ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

जो आत्मा बंध और आत्मा का स्वभाव जान-कर बंध से विरक्त होते हैं, वे ही कर्मबन्धनों से मुक्त होते हैं। ह्न आ. कुन्दकुन्द व उनके पंच परमागम, पृष्ठ-48

वर्ष : 28, अंक : 21 | सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** | आजीवन शुल्क : 251 रुपये
फरवरी (प्रथम), 2006 | प्रबन्ध सम्पादक : **पं. संजीवकुमार गोधा व पं. जितेन्द्र वि. राठी** | वार्षिक शुल्क : 25 रु., एक प्रति : 2/-

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सानन्द सम्पन्न

सागर (म. प्र.) : यहाँ नवनिर्मित 108 फीट उत्तुंग शिखरयुक्त श्री महावीरस्वामी दिगम्बर जिनमन्दिर हेतु श्री कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट के तत्त्वावधान में दिनांक 13 जनवरी से 19 जनवरी, 2006 तक श्री 1008 पार्श्वनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन विविध मांगलिक कार्यक्रमों पूर्वक सानन्द सम्पन्न हुआ।

महोत्सव में आ. सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के सी. डी. प्रवचनों के अतिरिक्त विद्यावारिधि डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव पर प्रासंगिक प्रवचन हुये।

आपके अतिरिक्त पण्डित विमलदादाजी झांझरी उज्जैन, ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, पण्डित राजेन्द्रजी जबलपुर, पण्डित शिखरचन्दजी विदिशा, पण्डित राकेशकुमारजी शास्त्री मंगलायतन, पण्डित शांतिकुमारजी पाटील जयपुर आदि विद्वानों के प्रवचनों का लाभ भी समाज को प्राप्त हुआ।

पंचकल्याणक की सम्पूर्ण प्रतिष्ठा-विधि बाल ब्र. पण्डित जतीशचन्दजी शास्त्री सनावद के प्रतिष्ठाचार्यत्व एवं निर्देशन में सहयोगी प्रतिष्ठाचार्य पण्डित शांतिकुमारजी पाटील जयपुर, पण्डित मधुकरजी जैन जलगाँव, पण्डित प्रकाशदादाजी मैनपुरी, पण्डित ऋषभजी छिंदवाड़ा, पण्डित सुबोधजी शाहगढ़, श्री सुनीलजी धवल भोपाल, पण्डित संदीपजी बड़ामलहरा, पण्डित सुकुमालजी झांझरी उज्जैन, पण्डित आशीषजी टीकमगढ़, पण्डित श्रेयांसजी अभाना, पण्डित वीरेन्द्रजी बरा, पण्डित सुदीपजी बरगी, पण्डित दीपेशजी गुढ़ा, पण्डित प्रियंकजी रहली, पण्डित बाबूलालजी बांझल गुना आदि विद्वानों ने सम्पन्न कराये।

जिनमंदिर के प्रथम तल पर विशाल स्वाध्याय भवन का उद्घाटन हुआ तथा द्वितीय तल पर मूलनायक भगवान श्री महावीरस्वामी के अतिरिक्त वासुपूज्यस्वामी, मल्लिनाथस्वामी, नेमीनाथस्वामी तथा विधिनायक भगवान पार्श्वनाथस्वामी की वीतरागी भाववाही मनोज्ञ प्रतिमायें तथा समवशरण मन्दिर में श्री पार्श्वनाथस्वामी की चार प्रतिमायें प्रतिष्ठा-विधिपूर्वक विराजमान की गई। साथ ही चार अनुयोगमय रत्नजड़ित जिनवाणी, वेदी में चार पूर्वाचार्यों के चरण, जिनमन्दिर के प्रांगण में चौबीस तीर्थंकरों के 24 स्वर्णकलश तथा समवशरण मन्दिर में 64 चँवरों की स्थापना की गई।

महोत्सव में पार्श्वकुमार के माता-पिता बनने का सौभाग्य श्रीमती सुशीला-महेन्द्रकुमार जैन सागर को प्राप्त हुआ। सौधर्म इन्द्र-इन्द्राणी श्री सुनील-मीना जैन सागर तथा कुबेर इन्द्र-इन्द्राणी श्री दीपक-प्रीति जैन सागर थे। सम्पूर्ण महोत्सव के यज्ञनायक श्री राजेन्द्र-कल्पना जैन रहे।

सांस्कृतिक कार्यक्रमों में जैन युवा फैडरेशन विदिशा मण्डल की प्रस्तुती '**सुकुमाल का वैराग्य**' नाटक सराहनीय रहा तथा मैनपुरी का विशेष पालना आकर्षण का केन्द्र रहा।

महोत्सव में सम्पूर्ण देश से पधारे हजारों साधर्मियों ने धर्मलाभ लिया। इस अवसर पर लगभग 75 हजार रुपये का सत्साहित्य एवं 17 हजार 45 रुपये के 7548 घंटो के सी.डी. व ऑडियो कैसिट्स घर-घर पहुँचे। ●

तारणस्वामी की साधनास्थली निसई में...

वेदी प्रतिष्ठा सम्पन्न

निसई (म. प्र.) : परमपूज्य दिगम्बर मुनिराज तारणस्वामी की साधनास्थली तीर्थक्षेत्र निसईजी में दिनांक 17 से 19 जनवरी, 2006 तक तारण समाज का तीनदिवसीय बृहत् आयोजन वेदीप्रतिष्ठा व कलशारोहण पूर्वक सम्पन्न हुआ।

तारण समाज के विशेष आमंत्रण पर पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल, जयपुर के मार्मिक प्रवचनों का लाभ समाज को मिला तथा दिनांक 19 जनवरी को डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल भी समाज के विशेष आग्रह पर सागर पंचकल्याणक से पधारे, जहाँ उनके दो प्रवचनों का लाभ साधर्मियों को प्राप्त हुआ।

इस आयोजन के प्रत्यक्षदर्शी भारिल्ल बन्धुओं के कहे अनुसार ''सम्पूर्ण तारण समाज का अध्यात्मप्रेम अनुकरणीय है। यद्यपि प्राचीन परम्परानुसार उनके अपने चैत्यालयों में मूर्ति स्थापित नहीं होती; परन्तु समाज तीर्थों की वन्दनार्थ जाती है, दिगम्बर मन्दिरों में शुद्धाम्नाय से पूजा करती है, आचार्य कुन्दकुन्द के तथा चार अनुयोगमय जिनवाणी का स्वाध्याय करती है एवं अध्यात्म के प्रति विशेष प्रेम रखती है।''

इसी अवसर पर श्री कपूरचन्दजी भाईजी द्वारा तारणस्वामी के ग्रन्थों से संकलित **देवपूजा** कृति विद्वानों को भेंट की गई। आपके अतिरिक्त ब्र. बंसतजी व पण्डित पद्मचन्दजी के भी प्रवचन हुये।

ज्ञातव्य है की सन् 1965 में पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं बाबूभाई भी यहाँ पधारे थे।

इस अवसर पर श्री तारण-तरण दिगम्बर जैन समाज द्वारा डॉ. भारिल्ल को '**समयसार रत्न**' एवं पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल को '**जिनागम मर्मज्ञ**' की उपाधि से सम्मानित कर गौरवान्वित किया गया। मंच संचालन डॉ. विद्यानन्द जैन ने किया। ●

सम्पादकीय ह्न

गृहविरत भरत और योगीश्वर बाहुबली की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि

ह्न रतनचन्द भारिल्ल

कर्नाटक प्रदेश के श्रवणबेलगोला के विंध्यगिरि पर स्थित 57 फुट उत्तंग सर्वांग सुन्दर योगीश्वर गोम्मटेश बाहुबली की सहस्राधिक वर्ष प्राचीन ऐतिहासिक उपसर्ग एवं परीषहजयी मूर्ति मूर्तिकला की दृष्टि से तो अद्यावधि बेजोड़ है ही; साथ ही यह सम्पूर्ण संकुचित, साम्प्रदायिक सीमाओं को लांघकर देश-विदेश के जैन/जैनेत्तर सभी धर्मनिष्ठ और मूर्तिकला प्रेमियों की श्रद्धा-भक्ति की केन्द्र भी बनी हुई है।

परमशान्त मुद्रायुक्त, वीतरागता की संवाहक, लाखों लोगों के कल्याण में निमित्त बननेवाली गोम्मटेश बाहुबली की मूर्ति की स्थापना को एक सहज सुखद संयोग ही कहना होगा, जो भव्यजीवों के भाग्य से सर्वप्रथम गंगवंशी राजा राजमल्ल के राज्यमंत्री एवं सेनाध्यक्ष चामुण्डराय के मन-मस्तिष्क में कल्पना के रूप में प्रसूत हुई थी और बाद में उन्हीं के सत् प्रयासों से अद्भुत कलाकृति के साथ तप-त्याग की सर्वोत्कृष्ट प्रतीक प्रतिमा के रूप में आविर्भूत हुई।

यह भी एक सहज संयोग रहा कि सभी तीर्थंकरों के गर्भ-जन्म-तप आदि पाँचों कल्याणक उत्तर भारत में ही हुए। इस कारण समस्त तीर्थस्थान उत्तर भारत में ही हैं। उनके दर्शनार्थ दक्षिण भारतीयों का उत्तर भारत में आना तो स्वाभाविक ही था; परन्तु उत्तर भारतीयों को दक्षिण में जाने के लिए ऐसा कोई आकर्षण नहीं था, जिसके कारण उत्तर के भारतीय दक्षिण में पहुँचते।

एतदर्थ अत्यन्त दूरदर्शी, राष्ट्रीय एकता के प्रति प्रतिबद्ध एवं सामाजिक संगठन के लिए समर्पित, वीर मार्तण्ड, समरकेसरी, सुभट चूड़ामणि आदि अनेक उपाधियों से अलंकृत बहु आयामी व्यक्तित्व के धनी चामुण्डराय द्वारा यह विशालतम मूर्ति निश्चित रूप से दक्षिण एवं उत्तर भारत की जैन समाज को एकता के सूत्र में बांधने के पावन उद्देश्य से स्थापित की गई थी, जो आज भी अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल है।

आश्चर्यजनक यह है कि सम्पूर्ण विश्व में फैली जैन जनता को इस मूर्ति ने अपने सौन्दर्य और परमशान्त वीतराग छवि से इतना अधिक प्रभावित किया कि आज भारत के कौने-कौने में इस मूर्ति की प्रतिकृति के रूप में लाखों मूर्तियाँ विराजमान हो गईं हैं और अभी भी अनवरत रूप से वैसी ही या उससे मिलती-जुलती मूर्तियों का निर्माण हो रहा है।

जर-जोरु और जमीन के निमित्त से भाई-भाई में संघर्ष होने की परम्परा तो बहुत पुरानी है ही, धर्म की आड़ में साम्प्रदायिक दंगे कम नहीं हुए। आज भी ऐसे अनेक तीर्थस्थान हैं, जिनपर चल रहे मुकदमों के कारण साधर्मी भाई-भाई भी आये दिन कोर्ट-कचहरियों के चक्कर काटा करते हैं। ऐसे किसी विवाद के विषय भगवान बाहुबली न बने, इस दूरदर्शी दृष्टिकोण से ही संभवतः चामुण्डराय द्वारा उक्त मूर्ति को खड्गासन के रूप में सम्पूर्ण दिगम्बरत्व के लक्षणों से युक्त बनवाया गया है। फलतः यह सम्पूर्ण जैन/जैनेत्तर समाज की श्रद्धास्पद होते हुए भी निर्विवाद है।

कह नहीं सकते कि किस मंगलमय मुहूर्त में, किस शुभ घड़ी में इस अप्रतिम प्रतिमा की स्थापना हुई, जिसके फलस्वरूप आज सहस्रादिक वर्ष बाद भी यह मूर्ति दर्शकों को नित्य नवीनता लिए जीवंतवत दिखाई देती है। दर्शकों को ऐसा लगता है कि देखते ही रहें, देखते ही रहें। देखते-देखते दर्शकों का मन ही नहीं भरता। मूर्ति के माध्यम से मूर्तिमान का स्मरण आते ही भक्तों की भक्ति-भावना और भी सहस्त्रगुणी प्रबल हो जाती है। विचार आता है कि 'धन्य हैं वे बाहुबली, जिन्होंने अपने अग्रज चक्रवर्ती भरत से तीनों शारीरिक युद्धों में विजय पाकर भी असार संसार का स्वरूप देखकर संसार-शरीर एवं भोगों से विरक्त होकर वैराग्य धारण कर लिया और आत्म साधना में ऐसे जमें कि आहार-विहार की सब सुध-बुध खोकर तत्त्व विचार में जमे ही रहे। स्वरूप में ऐसे रमें कि जबतक केवलज्ञान नहीं हुआ तब तक रमें ही रहे; एक वर्ष तक हिले-डुले ही नहीं। तन पर बेले चढ़ गई, सांपों ने बांबियाँ बना लीं। छिपकुलियाँ और बिच्छु जैसे विषैले प्राणी और डांस-मच्छर शरीर को काटते रहे, फिर भी योगीश्वर बाहुबली तपश्चरण से विचलित नहीं हुए। धन्य थी उनकी वह साधना, आत्मा की आराधना।' यह सब देखकर एवं स्मरण करके भक्तों का हृदय भक्तिभाव से द्रवित हुए बिना नहीं रहता।

तीर्थंकरों की प्रतिमायें प्रतिष्ठित करने की परम्परागत परिपाटी को गौण करके इस अद्भुत, अभूतपूर्व, बहुउद्देशीय, दिगम्बरत्व की दिग्दर्शक उपसर्ग और परिषहजयी योगीश्वर बाहुबली की मूर्ति को सुदूरवर्ती दक्षिण भारत के विंध्यगिरि पर्वत पर स्थापित करने के पीछे जिनेन्द्र भक्त सेनाध्यक्ष चामुण्डराय का क्या उद्देश्य और प्रयोजन रहा होगा? यह जिज्ञासा सहज स्वाभाविक ही है।

यदि यही जिज्ञासा कोई चामुण्डराय के सामने प्रगट करता तो सर्वप्रथम तो तत्त्ववेत्ता जिनागम के मर्मज्ञ सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य नेमीचंद के शिष्य चामुण्डराय आचार्य अमृतचंद के कथनानुसार अपनी अकर्तृत्व भावना को ऊर्द्ध रखते हुए यही कहते कि ह्न ''भैया! मैंने इसमें क्या किया? मैं तो मात्र विकल्पों का कर्त्ता हूँ और विकल्प मेरा कर्म है। पर पदार्थ रूप पाषाण में तो जो होनेवाला था, वही हुआ। मैंने तो मात्र अपना विकल्प ही किया है। हाँ, उस मूर्ति के निर्माण में मेरा विकल्प निमित्त अवश्य बना है। इस कारण व्यवहार से मुझे उसका कर्त्ता कहा गया है।

वस्तु में तो जब/जहाँ/जो होना होता है; तब/वहाँ/वही होकर रहता है। उसे इन्द्र और जिनेन्द्र भी टस में मस नहीं कर सकते। उस कार्य के अनुसार सब कारण भी स्वतः मिलते जाते हैं।

जैसा कि स्वामी अकलंकदेव ने कहा है ह्न

''तादृशि जायते बुद्धि, व्यवसायोऽपि तादृशः।
सहाया तादृशः सन्ति यादृशि भवितव्यता।।

अर्थात् जैसी होनहार हो, जैसा भवितव्य हो; तदनुसार विकल्प कर्ता की बुद्धि हो जाती है, पुरुषार्थ (प्रयत्न) या कार्य सम्पन्न होने की विधि भी तदनुसार स्वतः संचालित (सक्रिय) हो जाती है। सहायक कारण के रूप में निमित्त कारण भी वैसे ही स्वतः मिलते जाते हैं। सभी ह्न पाँचों समवाय स्वतः अपने आप मिलते जाते हैं और कार्य निष्पन्न हो जाता है।''

यही बात योगीश्वर बाहुबली की मूर्ति के निर्माण पर घटित होती है।

जब जैसा कार्य होने की योग्यता आई, काल पका; तदनुसार चामुण्डराय की बुद्धि उस दिशा में सक्रिय होती गई और भवितव्यानुसार कार्य सम्पन्न हो गया। यद्यपि सारी दुनिया चामुण्डराय को ही बहुमान देती है। सो उनका कहना भी सही है; क्योंकि वे निमित्त की मुख्यता से ऐसा कहते हैं। लोक व्यवहार में सारा कथन निमित्त की मुख्यता से ही होता है।

देखो, जब आचार्य अमृतचंद से यह कहा कि ह्न आपने समयसार की टीका सर्वोत्कृष्ट बनाई तो आपको ज्ञात है उन्होंने क्या उत्तर दिया? उन्होंने कहा कि ह्न ''तुम ऐसा कहकर मोह में मत नाचो। मैं परद्रव्य में कुछ फेर-फार का कर्त्ता नहीं हूँ। पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय ग्रन्थ के 226वें श्लोक में वे कहते हैं ह्न 'यह शास्त्र हमने नहीं बनाया। नाना प्रकार के अक्षरों से छन्द बने, छन्दो से चरण बने हैं। उन चरणों से वाक्य और वाक्यों से शास्त्र की रचना हुई है। इसमें मेरा कुछ भी कर्तृत्व नहीं है। समयसार की टीका के अन्त में भी उन्होंने यही भाव व्यक्त किया है। वहाँ वे कहते हैं कि ह्न

स्वशक्ति संसूचित वस्तु तत्वैः, व्याख्या कृतेयं समयस्य शब्दैः।
स्वरूपगुप्तस्य न किंचिदस्ति, कर्तव्य मेवामृतचन्द्रसूरेः।।

तात्पर्य यह है कि ह्न पौद्गलिक शब्द पुरुष के निमित्त से स्वतः वर्णपद वाक्य रूप से परिणमित होते हैं, इसलिए उनमें वस्तुस्वरूप कहने की शक्ति स्वयमेव है; क्योंकि शब्द का और अर्थ का वाचक-वाच्य सम्बन्ध है। इसप्रकार द्रव्यश्रुत की रचना शब्दों ने की है'' ह्न यही बात यथार्थ है। आत्मा तो अमूर्तिक है, ज्ञानस्वरूप है; इसलिए वह मूर्तिक पुद्गल की रचना कैसे कर सकता है?

यह बात ध्रुव सत्य होने पर भी निमित्त-नैमित्तिक व्यवहार से ऐसा ही कहा जाता है कि अमुक कार्य अमुक व्यक्ति ने किया। सो यह कहना भी असत्य नहीं है; क्योंकि लोक में समस्त व्यवहारिक कथन निमित्त सापेक्ष ही होते हैं; इसलिए यह कहना कि ''इस अद्भुत चमत्कारिक मूर्ति का निर्माण चामुण्डराय ने कराया यह कहना भी सत्य है। हाँ, पर ध्यान रहे ह्न **यह कहना व्यवहार है और ऐसा ही मान लेना मिथ्यात्व है।** वस्तुतः तो उस मूर्ति का निर्माण अपने स्व-चतुष्टयों से, पाँच समवायों और निश्चय षट्कारकों से ही हुआ है। अतः आध्यात्मिक दृष्टि से वस्तु स्वातंत्र्य और परद्रव्य में अहस्तक्षेप अथवा अकर्तृत्व के सिद्धान्तानुसार 'पर' में कर्तृत्व सम्बन्धी प्रश्न उठना ही संभव नहीं है; परन्तु सारे जगत में दो द्रव्यों के अत्यन्त घने निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध के कारण व्यवहार नयों से पर द्रव्यों में कर्ता-कर्म का व्यवहार चलता है। ऐसे व्यवहार के बिना लोक व्यवहार संभव भी नहीं है। जैनदर्शन की यह अलौकिक बात जाने-समझे बिना आत्मा का हित संभव नहीं है। अतः यह दृष्टि (अपेक्षा) भी विचारणीय है।

सर्वज्ञता के आधार से विचार करें तो भी अनन्त केवल ज्ञानियों के ज्ञान में यह पहले ही से आ चुका था कि 'दक्षिण भारत के श्रवण गोल में विंध्यगिरि पर्वत पर चामुण्डराय द्वारा स्थापित यह प्रतिमा विश्वविख्यात होगी, लाखों लोगों के कल्याण में निमित्त बनेगी। प्रत्येक बारह वर्ष में एक बार महामस्तकाभिषेक महामहोत्सव मनाया जाया करेगा। इस निमित्त से सम्पूर्ण उत्तर भारतीय जैन दक्षिण जाकर राष्ट्रीय एकता की भावना को पुष्ट करेंगे। शासन का सहयोग भी मिलेगा। श्रीमद्भट्टारक चारूकीर्ति स्वामीजी जैसे समर्पित तीर्थभक्त महान व्यक्तित्व की सेवाओं से तीर्थ की उन्नति में चार चाँद लग जायेंगे।'

यदि हमें वस्तुतः अरहन्त सिद्ध भगवन्तों की सर्वज्ञता में पूरा-पूरा विश्वास है, अटूट आस्था है तो किसी भी कार्य होने में क्यों? कैसे? का प्रश्न ही नहीं उठता, अन्यथा हमें सर्वज्ञता की परिभाषा बदलनी होगी। फिर ''सर्वद्रव्य पर्यायेषु केवलस्य'' तत्त्वार्थसूत्र के इस सूत्र पर प्रश्न चिन्ह लग जायेगा। एतदर्थ आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के प्रवचनसार परमागम की 39 वीं निम्नांकित गाथा भी दृष्टव्य हैं ह्न

''जदि पच्चक्ख मजादं पज्जायं पलयिदं च णाणस्स।
ण हवदि वा तं णाणं दिव्वं ति हि के परूवेंति।।३९।।
यदि अनुत्पन्न विनष्ट पर्यायें प्रत्यक्ष न ज्ञान के।
तो ज्ञान है वह 'दिव्य' ऐसा कौन निश्चय से कहे।।

अर्थ ह्न यदि अनुत्पन्न और नष्ट पर्यायें केवलज्ञान के प्रत्यक्ष नहीं हैं तो वास्तव में उस ज्ञान को 'दिव्य' कौन कहेगा?'' इस अपेक्षा चामुण्डराय तो निमित्त मात्र ही हुए। बाहुबली की मूर्ति का स्थापित होना तो अवश्यंभावी था ही। हाँ, इस कार्य की निष्पत्ति में जो पाँच समवाय (कारण) आवश्यक हैं, वे भी हुए ही थे। उनमें चामुण्डराय निमित्त कारण हुए।

दूसरे, व्यवहारिक दृष्टि से विचार करें तो निमित्त कारण के प्रति भी बहुमान आये बिना नहीं रहता। क्योंकि वे दक्षिण भारत में उत्तर भारतीयों के आकर्षण के लिए कुछ ऐसा आकर्षण बनाना चाहते थे, जो अन्यत्र कहीं न हो। तभी तो लोग इतनी दूर चलकर आयेंगे। दूसरा उद्देश्य उनका यह था कि ह्न तत्कालीन मुनियों में जो शिथिलता आ गई थी, उन्होंने वाणी से कुछ कहने के बजाय यह सोचा कि ह्न मुनिमुद्रा का ऐसा उपसर्ग और परीषहजयी यथार्थ स्वरूप प्रतीक रूप में बनाया जाय, जिससे शिथिल साधु स्वतः शिक्षा ले सकें। अतः उन्होंने उक्त बेलों से वेष्टित, साँप-बिच्छु, छिपकली जैसे विषैले प्राणियों के देह पर घूमते-फिरते और धूप-शर्दी-वर्षा तूफान के उपसर्ग-परिषह झेलती मुनि मुद्रा बनाकर दिगम्बर मुनि के कठोरतम तप-त्याग और निश्चल आत्म-साधना का यथार्थ प्रायोगिक स्वरूप प्रदर्शित किया है।

इससे एक लाभ यह भी है कि दिगम्बर साधुओं के प्रति दर्शकों का भक्तिभाव तो उत्पन्न होता ही है, श्रद्धा भी समर्पित होती है। यदि अपने मन के किसी कोने में काम-क्रोध, मद-मोह, राग-द्वेष होते हैं तो उस काम-क्रोधजयी मूर्ति के दर्शन मात्र से वे विकार भी विलय हो जाते हैं।

हजार वर्ष पुरानी ऐसी घोर तपस्या की प्रतीक मुनि की मूर्ति इस बात का सबूत है कि हजारों वर्षों से नग्न दिगम्बर मुनिराज होते रहे हैं और उनका निर्बाध विहार भी होता रहा है। इस प्रमाण के आधार पर आज भी तप-त्याग करने वाले नग्न दिगम्बर साधुओं का निर्बाध विहार होता रहा है और आगे भी होता रहेगा।

यहाँ यह बात विशेष ध्यान में रखने की है कि ऐसे विश्वव्यापी तीर्थक्षेत्रों पर छोटी-मोटी साम्प्रदायिकता की बातों को गौण करने पर ही सामाजिक एकता संभव है। अतः जबतक कोई बहुत बड़े मूल सिद्धान्तों का हनन न होता हो, तब तक क्षुद्र साम्प्रदायिक या व्यक्तिगत मतभेदों को अत्यन्त गौण करके विशाल दृष्टिकोण अपनाना ही धर्म और समाज के हित में है,

जिसे व्यक्तिगत रूप से कोई बात पसंद न भी हो तो वह उस बात से भले स्वयं बचे, परन्तु कृपया उसे अपने तक ही सीमित रखें। चर्चा करके सौम्य वातावरण को विषाक्त न बनायें, यही बुद्धिमानी की बात है। ऐसे पतितपावन योगीश्वर बाहूबली के चरणों में बारम्बार वन्दन करते हुए मैं भगवान भरत एवं योगीश्वर बाहूबली की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि के विषय में इतना कहना पर्याप्त समझता हूँ कि ह्न ''किसी भी व्यक्तित्व के विकास की पृष्ठभूमि या तो स्वयं की पूर्व पर्याय में प्राप्त स्वयं के संस्कारों से बनती है या फिर माता-पिता की पूर्व पीढ़ी से प्राप्त होती है। प्रथम आत्मा की पूर्व पर्याय की पीढ़ी और दूसरी माता-पिता की पूर्व पीढ़ी ह्न इन दोनों पीढ़ियों से प्राप्त पृष्ठभूमियाँ बालक के जन्म के समय बीजरूप में होतीं है, जो वृद्धिंगत उम्र और बाह्य व्यक्तित्व के विकास के साथ अपने पाँचों अन्तरंग-बहिरंग समवायों पूर्वक विकसित होती जाती हैं।

स्वभाव, पुरुषार्थ, भवितव्य (होनहार) स्वकाल और निमित्त ह्न इन पाँचों समवायों (कारणों) में प्रथम स्वभाव समवाय से तो दोनों भाई अनन्तगुणमय द्रव्य के रूप में कारण परमात्मा थे ही, उनका पुरुषार्थ समवाय भी अपनी अनन्तवीर्य शक्ति से इसी भव में मुक्ति प्राप्त करने की ओर उछल रहा था। तभी तो जन्म से ही वे आत्मोन्मुखी वृत्तिवाले क्षायिक समकिती और शारीरिक दृष्टि से बज्र वृषभ नाराच सहनन के धारी थे।

भवितव्य नामक तृतीय समवाय तो तद्भव मोक्षगामी, उसी भव में मोक्ष प्राप्त करने का था ही। स्वकाल भी अपने सुनिश्चित क्रमनियमित परिणाम के अनुसार अध्यात्म की अविरल धारा में प्रवाहित हो ही रहा था। बाह्य कारणों में निमित्त कारण भी उपर्युक्त चारों अंतरंग कारणों का ही अनुसरण कर रहे थे। इस प्रकार जब जैसा कार्य होने का स्व-काल आता है, तब सभी कारण सहज स्वतः ही मिलते जाते हैं।

आत्मा के पूर्वभव की पर्यायों से प्राप्त आध्यात्मिक पृष्ठभूमि के दृष्टिकोण से यदि हम भरत एवं बाहुबली की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि को देखें तो वे दोनों ही उस सर्वार्थसिद्धि से आये थे, जहाँ जीवनभर-तैतीस सागर तक निरन्तर आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा ही चलती है। तथा शारीरिक जन्म देने वाली पूर्व पीढ़ी से देखें तो वे जन्म से ही तीन ज्ञान के धारी तीर्थंकर राजा ऋषभदेव जैसे शलाका पुरुष के घर में जन्मे थे।

इसप्रकार दोनों ही दृष्टियों से उनकी आध्यात्मिक पृष्ठभूमि कैसी रही होगी? इसकी कल्पना ज्ञानी आध्यात्मिक पुरुष ही कर सकते हैं।

तीसरी बात यह है कि भरत एवं बाहुबली ह्न दोनों ही जन्म से ही क्या, पूर्वभव से भी क्षायिक समकिती थे, जिसके विषय में कहा जाता है कि ह्न

'चिन्मूरत दृग धारिनि की मोय रीति लगत कुछ अटापटी।
ऊपर नारकि कृत दुःख भोगे, अन्तरसम रस गटा-गटी।।'

भगवान भरतजी के विषय में तो यह युक्ति जगत प्रसिद्धि है कि ह्न ''भरतजी घर में ही वैरागी।'' यदि ऐसा नहीं होता तो कपड़ा उतारते-उतारते, नग्न मुद्रा धारण करते ही सप्तम गुणस्थान में जाकर अन्तमुहूर्त में मुनिमार्ग की सम्पूर्ण प्रक्रिया को पार करके केवलज्ञान कैसे प्राप्त हो जाता? यह उनकी पूर्व आध्यात्मिक पृष्ठभूमि का ही कमाल तो था। योगीश्वर बाहुबली भी मुनिधर्म की कठोरतम साधना से एकवर्ष के अल्पकाल में ही आत्म-आराधना के अपूर्व पुरुषार्थ से जगतपूज्य परमात्मपद प्राप्त कर भगवान बन गये।

भगवान भरत की स्थिति बिल्कुल अपूर्व और भिन्न थी, केवल्यप्राप्ति का ऐसा अद्भुत कार्य, जिसमें वर्षों की कठोर साधना लगती है, उसे अन्तमुहूर्त में प्राप्त कर लेना तो एक चमत्कार ही कहा जायेगा। अतः वह क्रिया हमारा आदर्श नहीं बन सकती। अतः हमारे आदर्श तो भगवान बाहुबली ही हैं।

यहाँ यह जानना भी जरूरी है कि जिससे जगतपूज्य परमात्मपद प्राप्त करते हैं वह आध्यात्मिकता क्या वस्तु है, जिसकी पृष्ठभूमि में ऐसे मुक्तिरूप वटवृक्ष के बीज विद्यमान होते हैं उसे जानना अति आवश्यक है, अन्यथा हमें उस मार्ग पर चलना संभव नहीं हो सकेगा। अतः आध्यात्मिकता की संक्षिप्त व्याख्या प्रस्तावित है ह्न

लौकिक दृष्टि से यद्यपि समस्त धार्मिक क्रियाओं आध्यात्मिक क्रियायें कहने को व्यवहार है; परन्तु आत्मज्ञान के बिना बाह्य धार्मिक क्रियाओं के आध्यात्मिक कहना सार्थक नहीं है। 'आध्यात्मिक' शब्द अध्यात्म का भाव वाचक है और अध्यात्म शब्द अधि + आत्म इन दो शब्दों से बना है, जिसका अर्थ है आत्मज्ञान। यद्यपि यह 'आत्मज्ञान' शब्द कहने-सुनने में सरल लगता है; परन्तु एतदर्थ आत्मद्रव्य का यथार्थस्वरूप समझना अत्यन्त आवश्यक है।

यद्यपि 'आध्यात्मिक' शब्द का शाब्दिक अर्थ आत्मा का ज्ञान होता है, परन्तु भरत-बाहुबली की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि के संदर्भ में 'आध्यात्मिक' शब्द का अर्थ बहुत व्यापक है। यह जैनदर्शन के 'वस्तुस्वातंत्र्य' के सिद्धान्त का द्योतक है। जैनदर्शन के अनुसार जगत में जो अनन्त आत्मायें हैं, वे सभी स्वभाव से सिद्ध परमात्मा की भाँति शुद्ध-मात्र ज्ञातादृष्टा हैं, कारण परमात्मा हैं, पर्याय में पूर्णता प्राप्त करने के लिए पूर्ण स्वतंत्र एवं स्वावलम्बी हैं, परमुखापेक्षी नहीं हैं।

न केवल आत्मायें, बल्कि पुद्गल का प्रत्येक पुद्गल का परमाणु भी अपने आपमें परमेश्वर है, अपने परिणमन में पूर्ण स्वतंत्र है। सभी द्रव्य स्वभाव से ध्रुव होते हुए भी अपने-अपने निरंतर परिणमन करते रहते हैं। इन्हें परिणमाने वाला अन्य कोई नहीं है। सभी द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभावी हैं। अतः एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्त्ता-भोक्ता नहीं है।

इसप्रकार सच्ची समझ और श्रद्धावाले व्यक्ति ही आध्यात्मिक व्यक्ति हैं। इसी श्रद्धा के बल पर भरत और बाहुबली घर में रहते हुए भी गृह विरत थे।

यद्यपि चारित्र मोह के निमित्त और अपनी वर्तमान पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण राज-काज करने का भाव एवं न्याये1नीत से अपने साम्राज्य की सुरक्षा और बढ़ाने का भाव भी आता था; पर श्रद्धान में कोई कमी नहीं थी, तभी तो आत्म सम्मुखता का पुरुषार्थ जागृत होते ही अपने-अपने स्वकाल में सारे रागात्मक विकल्प समित हो गये और उनका राग वैराग्य में बदल गया। उस बीजरूप में विद्यमान आध्यात्मिकता अंकुरित हो उठी और दोनों ही भ्राता मुक्ति मार्ग अग्रसर होकर परमात्मा बन गये।

हम भी उन्हीं के आदर्शों पर अग्रसर होकर शीघ्र परमात्मा बनें ह्न इस मंगल भावना के साथ विराम। ॐ नमः। ●

मूर्तियों के मस्तक मिले : 7 वर्ष बाद

गोलाकोट (खनियांधाना–म. प्र.) : वर्ष 1998 में खनियांधाना के समीप गोलाकोट स्थित दिगम्बर जैन मंदिर पर 2500 वर्ष प्राचीन अतिदुर्लभ 32 जैन मूर्तियों के मस्तक काटकर अन्तर्राष्ट्रीय तस्कर बाजारों में बेचे जाने के प्रयास की शर्मनाक घटना के बाद समाज के अथक प्रयत्नों तथा लगभग 7 वर्षों की लम्बी कानूनी लड़ाई के बाद दिनांक 20 दिसम्बर, 05 को माननीय विशेष न्यायाधीश संजीव दत्ताजी के सी.बी.आई कोर्ट इन्दौर द्वारा सभी मूर्तियों के मस्तक दिगम्बर जैन समाज को सौंपे गये; जिन्हें समाज की ओर से दिगम्बर जैन महासमिति के पूर्व राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री अशोक बड़जात्या, शांतिनाथ चौरासी दिगम्बर जैन मंदिर ट्रस्ट खनियांधाना के अध्यक्ष श्री नाथूराम जैन कठरिया, मंत्री श्री ताराचन्द सिंघई, कोषाध्यक्ष श्री सुनीलकुमार जैन, श्री विजय बड़जात्या आदि समाज के पदाधिकारियों ने प्राप्त किये।

दिगम्बर जैन समाज की धार्मिक एवं सांस्कृतिक आस्था को इस दुष्कृत्य से जो मानसिक चोट पहुँची हैं; इन मस्तकों के प्राप्त होने से उसकी भरपाई भी नहीं हो सकती; लेकिन फिर भी सी.बी.आई ने चुस्ती दिखाकर आरोपियों को दण्डित किया एवं समाज को पुन: मूर्तियों के मस्तक सौंपे, इससे समाज में हर्ष व्याप्त है। कम से कम भविष्य में ऐसी कुत्सित घटनाओं की पुनरावृत्ति नहीं हो पायेगी ह्न ऐसा समाजवालों का मानना है।

उक्त मस्तक पुन: धार्मिक विधि–विधान के साथ गोलाकोट मंदिरजी में खण्डित मूर्तियों पर स्थापित किये जायेंगे, जिसके लिये वृहद्स्तर पर एक समारोह आयोजित किया जायेगा। **ह्न अशोक बड़जात्या**

वैराग्य समाचार

पिपलानी–भोपाल निवासी विदुषी श्रीमती मुन्नीबाई (मनोरमा) जैन धर्मपत्नी श्री गुलाबचन्दजी जैन का 75 वर्ष की आयु में दिनांक 3 जनवरी,06 को आत्मचिंतन करते हुये साम्यभावपूर्वक देहावसान हो गया।

आप पूज्य गुरुदेवश्री की प्रेरणा एवं उनके मंगल सान्निध्य में निर्मित श्री दिगम्बर जैन मंदिर बी.एच.ई.एल. की प्रमुख कार्यकर्ता थी। स्वाध्यायप्रेमी महिला होने के साथ ही मुमुक्षु मण्डल व भोपाल से संचालित गतिविधियों में सदैव सक्रिय रहती थीं। आपके निधन से भोपाल समाज को अपूरणीय क्षति हुई है। आपकी स्मृति में टोडरमल स्मारक ट्रस्ट को 501 रुपये प्राप्त हुये हैं।

दिवंगत आत्मा शीघ्र ही अभ्युदय को प्राप्त हो ह्न यही मंगल भावना है।

भोजनालय का लोकार्पण एवं छात्रावास का शिलान्यास समारोह सम्पन्न

द्रोणगिरि (छतरपुर–म.प्र.) : श्री गुरुदत्त कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, द्रोणगिरि द्वारा निर्माणाधीन **सिद्धायतन** में दिनांक 20 जनवरी, 2006 को महासती चंदनबाला भोजनालय का उद्घाटन डॉ. वासंतीबेन शाह मुम्बई एवं श्री गुरुदत्त छात्रावास का शिलान्यास समारोह श्री पूनमचन्दजी नरेशकुमारजी लुहाड़िया दिल्ली के करकमलों से सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर पण्डित विमलदादाजी झांझरी उज्जैन, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, पण्डित राजेन्द्रकुमारजी जबलपुर, ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना, पण्डित राजकुमारजी शास्त्री बांसवाड़ा, पण्डित पीयूषजी शास्त्री जयपुर, पण्डित कोमलचन्दजी जैन टड़ा, ब्र. विमलाबेन आदि विद्वानों का सान्निध्य प्राप्त हुआ।

ध्वजारोहण श्री महीपालजी शाह बांसवाड़ा ने किया तथा विधि–विधान के कार्य पण्डित विरागजी शास्त्री ने सम्पन्न कराये। **ह्न मस्तांई प्रेमचन्द जैन**

तत्त्वार्थसूत्र महामण्डल विधान का आयोजन

जबलपुर (म.प्र.) : यहाँ भगवान महावीरस्वामी दिगम्बर जिनमंदिर की स्थापना के पाँचवी वर्षगांठ के अवसर पर दिनांक 4 से 10 जनवरी, 2006 तक तत्त्वार्थसूत्र महामण्डल विधान का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर प्रतिदिन प्रात: एवं रात्रि में पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली के क्रमबद्धपर्याय पर मार्मिक प्रवचनों के अतिरिक्त दोपहर में ब्र. विमलाबेन, पण्डित सुनीलजी धवल एवं पण्डित नरेन्द्रजी के प्रवचन हुये।

विधि–विधान के कार्य एवं रात्रि के सांस्कृतिक कार्यक्रमों में पण्डित विरागजी शास्त्री के अतिरिक्त पण्डित श्रेयांसजी शास्त्री, पण्डित अभिनयजी शास्त्री, पण्डित मनोजजी व पण्डित श्रेणिकजी का विशेष सहयोग रहा।

फैडरेशन के पहल पर इस वर्ष महावीर जयन्ती के अवसर पर डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल द्वारा लिखित **शाकाहार और अहिंसा** पुस्तक की 2500 प्रतियाँ नि:शुल्क वितरित करने का निर्णय लिया गया। **ह्न अनुभव जैन**

प्रतिमायें बरामद

हाँसी (हरियाणा) : यहाँ जैनमंदिर से विगत माह दुर्लभ जैन मूर्तियाँ चोरी हो गई थीं। ये मूर्तियाँ लगभग 1 दशकपूर्व हांसी के ही अनंगपाल किले से धातु–पात्र में प्राप्त हुई थीं। चोरों ने विगत दिनों मंदिर में विराजमान इन पुरातत्त्व महत्व की दुर्लभ मूर्तियों को चुरा लिया था; किन्तु प्रदेश के मुख्यमंत्री एवं हरियाणा पुलिस की सक्रियता से मूर्तियाँ प्राप्त हो गई हैं, जिससे दिगम्बर जैन समाज में हर्ष व्याप्त है। इस कार्य हेतु समाज द्वारा हरियाणा के मुख्यमंत्री को धन्यवाद प्रेषित किया गया। ●

साधना चैनल पुन: आरंभ

प्रतिदिन रात्रि में 10.20 पर डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के प्रवचनों को देखना/सुनना न भूलें। प्रसारण में 5–7 मिनिट की देरी भी हो सकती है। यदि निर्धारित समय से 10 मिनिट बाद तक भी प्रवचन प्रारंभ नहीं हो तो श्री पीयूषकुमारजी शास्त्री से 9414717829 अथवा (0141) 2705581 नं. पर सम्पर्क करें।

प्रवचनसार का सार

ह्न डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

44

सत्रहवाँ प्रवचन

प्रवचनसार परमागम में ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार के अंत में समागत ज्ञानज्ञेयविभागाधिकार पर चर्चा चल रही है।

उसी संदर्भ में गाथा १५४ का भावार्थ इसप्रकार है ह्न

''मनुष्य, देव इत्यादि अनेकद्रव्यात्मकपर्यायों में भी जीव का स्वरूपास्तित्व और प्रत्येक परमाणु का स्वरूपास्तित्व (अर्थात् अपने-अपने द्रव्य-गुण-पर्याय और ध्रौव्य-उत्पाद-व्यय) स्पष्टतया भिन्न जाना जा सकता है। स्व-पर का भेद करने के लिये जीव के इस स्वरूपास्तित्व को पद-पद पर लक्ष्य में लेना योग्य है।

यथा ह्न यह (जानने में आता हुआ) चेतन द्रव्य-गुण-पर्याय और चेतन ध्रौव्य-उत्पाद-व्यय जिसका स्वभाव है ह्न ऐसा मैं इस (पुद्गल) से भिन्न रहा; और यह अचेतन द्रव्य-गुण-पर्याय तथा अचेतन ध्रौव्य-उत्पाद-व्यय जिसका स्वभाव है ह्न ऐसा पुद्गल यह (मुझसे) भिन्न रहा; इसलिए मुझे पर के प्रति मोह नहीं है; स्व-पर का भेद है।''

यह भावार्थ बहुत ही मार्मिक है तथा इस भावार्थ में दो-तीन बातें ऐसी हैं; जिन पर मुमुक्षु भाइयों का ध्यान नहीं है। मैं उन बातों पर आप सबका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ।

सर्वप्रथम तो मैं यह बताना चाहता हूँ कि आचार्यदेव ने ९३वीं गाथा में **'पज्जयमूढा हि परसमया'** की बात की थी, उसमें जो अनेकद्रव्यात्मक असमानजातीय मनुष्यरूप व्यंजनपर्याय की चर्चा आरंभ की थी, वही चर्चा अभी तक निरन्तर करते आ रहे हैं।

दूसरी बात यह है कि यह जो आत्मा और पुद्गलों का मिला हुआ मनुष्य नामक संगठन है; वह वास्तव में मिला नहीं है; क्योंकि इस संगठन को मिला हुआ हम तब कह सकते हैं, जब दोनों के स्वरूपास्तित्व में कुछ अंतर आया होता; लेकिन आत्मा और पुद्गल परमाणुओं का स्वरूपास्तित्व बिल्कुल अलग-अलग है।

उपरोक्त टीका में स्वरूपास्तित्व का अर्थ अपने-अपने द्रव्य-गुण-पर्याय और ध्रौव्य-उत्पाद-व्यय बताया है। तात्पर्य यह है कि अपने-अपने द्रव्य-गुण-पर्याय और अपने-अपने ध्रौव्य-उत्पाद-व्यय का नाम स्वरूपास्तित्व है। ऐसे स्वरूपास्तित्व को पद-पद (कदम-कदम) पर अपने लक्ष्य में लेना योग्य है।

यहाँ ऐसा समझना ठीक नहीं है कि यहाँ जो चेतन की बात चल रही है, वह तो किसी अन्य चेतनद्रव्य की बात चल रही है, यह चर्चा अपनी थोड़े ही है। 'मैं' शब्द से वाच्य आत्मा तो मैं नहीं; कोई दूसरा ही है।

अरे भाई ! टीका में स्पष्ट लिखा है ह्न ''ऐसा मैं इस (पुद्गल) से भिन्न रहा'' ह्न इसप्रकार यह अपनी ही चर्चा है। पुद्गल को भी भिन्न करते हुए आचार्यदेव ने टीका में लिखा है कि ह्न ''यह अचेतन द्रव्य-गुण-पर्याय तथा अचेतन ध्रौव्य-उत्पाद-व्यय जिसका स्वभाव है, ऐसा पुद्गल मुझसे भिन्न रहा। इसलिए मुझे पर के प्रति मोह नहीं है; स्व-पर का भेद है।''

इस प्रवचनसार परमागम के ज्ञेयतत्वप्रज्ञापन में जहाँ एक पूरा अधिकार लिखा गया और उसका नाम ज्ञानज्ञेयविभागाधिकार रखा; उसमें ज्ञान से जिसे अभिहित किया, उसका नाम तो जीव है और उससे मिली हुई जो पौद्गलिक पर्याय है; उसका नाम है मनुष्यपर्याय; देवपर्याय अथवा असमानजातीयद्रव्यपर्याय। इस अधिकार में जीव और इस असमानजातीयद्रव्यपर्याय में भेदविज्ञान कराया गया है।

कई लोग भेदविज्ञान के नाम पर आत्मा की पर्यायें तो आत्मा से अलग कर ही देते हैं, गुण और प्रदेश भी अलग कर देते हैं।

अरे भाई। यदि आत्मा में से गुणों और प्रदेशों को भी अलग कर दिया तो आत्मा की सत्ता ही नहीं रहेगी; फिर तो वह गधे के सींग के समान हो जावेगा। **'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्', 'सत् द्रव्यलक्षणम्'** एवं **'गुणपर्ययवद् द्रव्यम्'** ह्न महाशास्त्र तत्त्वार्थसूत्र के इन सूत्रों में स्पष्ट है कि द्रव्य उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य एवं गुण व पर्यायों से युक्त होता है और यही ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार की पहली एवं इसी ग्रंथ की ९३वीं गाथा में कहा है; जो इसप्रकार है ह्न

अत्थो खलु दव्वमओ दव्वाणि गुणप्पगाणि भणिदाणि।
तेहिं पुणो पज्जाया पज्जयमूढा हि परसमया॥९३॥

(हरिगीत)

गुणात्मक हैं द्रव्य एवं अर्थ हैं सब द्रव्यमय।
गुण-द्रव्य से पर्यायें पर्ययमूढ़ ही हैं परसमय॥९३॥

पदार्थ द्रव्यस्वरूप है; द्रव्य गुणात्मक कहे गये हैं; और द्रव्य तथा गुणों से पर्यायें होती हैं। पर्यायमूढ जीव परसमय (अर्थात् मिथ्यादृष्टि) है।

इसप्रकार यहाँ असमानजातीयद्रव्यपर्यायरूप मनुष्य में विद्यमान आत्मा और देह के बीच भेदविज्ञान कराया गया है।

आचार्यदेव कहते हैं कि आखिर जीव और पुद्गल का यह संयोग हुआ कैसे; जिससे हमें भेदविज्ञान करने की आवश्यकता आ पड़ी ?

इस देह और आत्मा का जो समागम हुआ है; उसमें देह और आत्मा का स्वरूपास्तित्व तो अलग-अलग ही है; पर आत्मा का सादृश्यास्तित्व मात्र शरीररूप परिणमित पुद्गल परमाणुओं के साथ ही नहीं; अपितु अलोकाकाश के साथ भी एक ही है; क्योंकि महासत्ता की अपेक्षा तो अलोकाकाश भी है और आत्मा भी है, अलोकाकाश भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त है और आत्मा भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त है, अलोकाकाश भी द्रव्य-गुण-पर्याय से संयुक्त है एवं आत्मा भी द्रव्य-गुण-पर्याय से संयुक्त है ह्न इसप्रकार की एकता आत्मा की अलोकाकाश के साथ भी है।

स्वरूपास्तित्व अपने द्रव्य-गुण-पर्याय के अन्दर ही होता है; क्योंकि उन द्रव्य-गुण-पर्यायों के बीच परस्पर में अतद्भाव होता है, अत्यन्ताभाव नहीं होता है; अत्यन्ताभाव तो पर के साथ होता है, दो द्रव्यों के बीच में होता है। अत्यन्ताभाव एक द्रव्य के दो गुणों के बीच या एक द्रव्य की गुण-पर्यायों के बीच में नहीं होता। एक द्रव्य की गुण-पर्यायों के बीच में तो अतद्भाव होता है और जिनमें अतद्भाव होता है; उनका स्वरूपास्तित्व

एक होता है।

इसप्रकार जीव और पुद्गल का जो संगठन है; उसमें स्वरूपास्तित्व तो दोनों का भिन्न-भिन्न है; लेकिन सादृश्यास्तित्व तो सभी का सभी के साथ है। इससे हमें कोई हानि भी नहीं है; क्योंकि इससे हमें कुछ सुख-दुःख भी नहीं है। सादृश्य की अपेक्षा भी एकत्व स्वीकार नहीं किया है ह्न ऐसा मिथ्यात्व तो हमें हुआ है; लेकिन आकाशादि में एकत्व-ममत्व रूप (अपना माननेरूप) मिथ्यात्व आजतक नहीं हुआ है।

इसप्रकार अलोकाकाश के साथ सादृश्यास्तित्व होने से कोई समस्या नहीं है। कार्माण वर्गणा और जिनसे हमारा नोकर्म शरीर बना है ह्न ऐसी आहार वर्गणाओं के साथ हमारा संयोग कब से हुआ है, कैसे हुआ है ? ह्न इस संबंध में आचार्यदेव बता रहे हैं।

समयसार में कहा गया है कि बंध ज्ञानगुण के कारण हुआ। उक्त कथन के विशेष स्पष्टीकरण में कहा गया कि ज्ञानगुण के जघन्य परिणमन के कारण बंध हुआ; क्योंकि ज्ञानगुण के जघन्यपरिणमन के साथ राग का होना अनिवार्य है और राग से बंध होता है ह्न यह तो सर्वमान्य ही है।

आचार्यदेव कहते हैं कि ज्ञान के कारण पर जानने में आया; इसलिए उसे अपना मान लिया। यदि पर जानने में ही नहीं आता तो उसे अपना भी नहीं मानते। समस्त गड़बड़ी जानने में हुई; अतएव ज्ञान को ही बंध का कारण कह दिया।

१५५वीं गाथा में वे लिखते हैं कि आत्मा उपयोगात्मक है और उपयोग दर्शन-ज्ञान है। फिर आत्मा के उपयोग को शुभ और अशुभ रूप कहकर चारित्र वाले उपयोग को ग्रहण कर लिया।

आचार्यदेव ने उपयोग अर्थात् ज्ञान-दर्शन से बात प्रारंभ की और शुभ और अशुभ उपयोग की बात ले ली कि शुभ और अशुभ उपयोग के कारण कर्म का बंध हुआ और उनके उदय से शरीर का संयोग मिला ह्न इसप्रकार आत्मा और पुद्गलों का संगठन हो गया।

इसप्रकार आचार्य असमानजातीयद्रव्यपर्याय होने के लिए उपयोग को कारण कहते हैं। आकाश द्रव्य में उपयोग नहीं है; इसलिए उसे बंधन नहीं हुआ। धर्म, अधर्म, आकाश और काल में भी उपयोग नहीं है; इसलिए उन्हें भी बंधन नहीं हुआ। पुद्गल यद्यपि स्कन्धरूप परिणमित होकर जीव के साथ बंधन में हो जाता है; लेकिन उसे इस बंधन से सुख-दुःख नहीं होता है; क्योंकि उसमें सुख नाम का गुण ही नहीं है; किन्तु आत्मा में उपयोग अर्थात् ज्ञान, दर्शन तथा श्रद्धा नामक गुण भी है। आत्मा ज्ञान गुण से पर को जान लेता है, श्रद्धा गुण से अपना मान लेता है और चारित्र नामक गुण से उसमें जम जाता है, रम जाता है और बंधन में पड़ जाता है।

इस कथन का विश्लेषण करनेवाली टीका का भाव इसप्रकार है ह्न

''वास्तव में आत्मा को परद्रव्य के संयोग का कारण उपयोग विशेष है। प्रथम तो उपयोग वास्तव में आत्मा का स्वभाव है; क्योंकि वह चैतन्यानुविधायी (उपयोग चैतन्य का अनुसरण करके होनेवाला) परिणाम है और वह उपयोग ज्ञान तथा दर्शन है; क्योंकि चैतन्य साकार और निराकार ऐसा उभयरूप है।

इस उपयोग के शुद्ध और अशुद्ध ऐसे दो भेद किये गये हैं। उसमें, शुद्ध उपयोग निरूपराग (निर्विकार) है और अशुद्ध उपयोग सोपराग (सविकार) है। और वह अशुद्ध उपयोग शुभ और अशुभ ऐसे दो प्रकार का है; क्योंकि उपराग विशुद्धिरूप और संक्लेशरूप ह्न ऐसा दो प्रकार का है।''

टीका में चैतन्य को साकार से युक्त बताया है और साकार का अर्थ विकल्प होता है अर्थात् विकल्प तो ज्ञान का स्वभाव है। जो निर्विकल्पता के नाम पर ज्ञानात्मक विकल्प को निकालना चाहते हैं; वे अज्ञानी हैं। हमने पूर्व में भी यह पढा है कि **अर्थविकल्पात्मकं ज्ञानम्** यहाँ अर्थ का अर्थ तो स्व और पर सभी पदार्थ है और विकल्प का अर्थ है, उनके बीच भेद को जानना। जहाँ भी विकल्प का निषेध है, वहाँ रागात्मक विकल्प का निषेध है, और जहाँ जानने का निषेध प्रतीत होता है, वहाँ पर पर को 'ये मैं हूँ' इस रूप अपना जानने का निषेध है; लेकिन जहाँ ज्ञान का स्वरूप ही विकल्प है, उसका निषेध कैसे हो ? इसप्रकार टीका में चैतन्य को साकार एवं निराकार कहकर उसके स्वभाव की चर्चा की।

इसप्रकार इस गाथा की टीका में इस बात का स्पष्टीकरण किया है कि शरीरादि के संयोग का कारण ज्ञानात्मक उपयोग न होकर; अपितु शुभ और अशुभ नामक जो अशुद्धोपयोग है; वह है।

तदनन्तर कौन-सा उपयोग परद्रव्य के संयोग का कारण है ह्न यह दर्शानेवाली १५६वीं गाथा इसप्रकार है ह्न

उवओगो जदि हि सुहो पुण्णं जीवस्स संचयं जादि।
असुहो वा तध पावं तेसिमभावे ण चयमत्थि ।।१५६ ।।

(हरिगीत)

उपयोग हो शुभ पुण्यसंचय अशुभ हो तो पाप का।
शुभ-अशुभ दोनों ही न हो तो कर्म का बंधन न हो ।।१५६।।

उपयोग यदि शुभ हो तो जीव के पुण्य संचय होता है और यदि अशुभ हो तो पाप संचय का होता है। उन दोनों के अभाव में बंध का अभाव होता है।

इस गाथा में अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि जब शुभोपयोग होता है तो पुण्यबंध होता है और जब अशुभोपयोग होता है तो पापबंध होता है एवं जब दोनों का अभाव होता है, तब न पुण्यबंध होता है और न पापबंध होता है; अपितु बंध का अभाव होता है।

देखो, कितनी स्पष्ट बात है; फिर भी लोग न जाने क्यों पुण्य भाव को बंध के अभाव का कारण मानते हैं।

इस गाथा का आश्रय लेकर ही कई लोग कहते हैं कि इस गाथा में लिखा है कि शुभोपयोग होता है तो पुण्यबंध होता है; इसलिए शुभोपयोग तो उपादेय है न ?

अरे भाई। इस गाथा में यह थोड़े ही लिखा है कि पुण्यबंध करना चाहिए। इस गाथा में तो क्या होता है ह्न इसकी बात चल रही है। यह व्याख्यान क्या करना चाहिए एवं क्या नहीं करना चाहिए ह्न इसप्रकार के हेय-उपादेय का नहीं है। **(क्रमशः)**

रजिस्ट्रेशन आर. एन. आई. 31109/77

राष्ट्रपति द्वारा मस्तकाभिषेक समारोह का उद्घाटन

श्रवणबेलगोला (कर्नाटक) : यहाँ दिनांक 8 फरवरी से 19 फरवरी, 2006 तक आयोजित होनेवाले 86 वें महामस्तकाभिषेक का शुभारंभ दिनांक 22 जनवरी, 2006 को महामहिम राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने किया।

इस अवसर पर डॉ. कलाम ने दुनिया में एकता और पुनर्जागरण की शिक्षा देनेवाले जैनधर्म के बारे में व्यापक स्तर पर अध्ययन तथा जैनधर्म से जुड़े साहित्य के प्रसार के लिये एक विशेष शोध संस्थान स्थापित करने का आह्वान किया।

समारोह में पूर्व प्रधानमंत्री एच.डी. देवगौडा, कर्नाटक के मुख्यमंत्री डॉ. धर्मसिंह, राज्यपाल टी. एन. चतुर्वेदी, भट्टारक स्वस्तिश्री चारुकीर्ति स्वामीजी आदि महानुभाव उपस्थित थे।

ज्ञातव्य है कि महामस्तकाभिषेक के तहत एक माह तक विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन होगा; जिसमें कई राजनैतिक हस्तियाँ समारोह में उपस्थित होंगी। ●

डॉ. वाचस्पति उपाध्याय स्मारक भवन में

जयपुर (राज.) : दिनांक 23 जनवरी को भारतीय विश्वविद्यालय संघ के अध्यक्ष एवं लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, दिल्ली के कुलपति डॉ. वाचस्पति उपाध्याय विश्वविद्यालय द्वारा सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य विद्यानन्दजी मुनिराज के मंगल सान्निध्य में आयोजित कुन्दकुन्द स्मृति व्याख्यानमाला के अन्तर्गत समयसार ग्रन्थ पर विशेष व्याख्यान हेतु डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल को आमंत्रित करने श्री टोडरमल स्मारक भवन में पधारे।

संस्था की ओर से चल रही विविध गतिविधियों का विस्तृत परिचय प्राप्त करके संस्था द्वारा जैनदर्शन के प्रचार हेतु किये जा रहे कार्यों की उन्होंने मुक्त कंठ से प्रशंसा की।

महाविद्यालय के विद्यार्थियों हेतु भी उनका मार्गदर्शन प्राप्त हुआ; जिसमें उन्होने विद्यार्थियों को विद्या का अर्थ, समय और महाविद्यालय क्षेत्र की महत्ता बताते हुये उसके सदुपयोग की प्रेरणा दी।

इस अवसर पर पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की ओर से उनका रजत श्रीफल, शॉल, सत्साहित्य एवं प्रशस्ति-पत्र भेंट कर सम्मान किया गया। ●

25 परिवारों ने किया धर्म परिवर्तन

नादोती-करौली (राज.) : यहाँ समीपवर्ती गुढ़ाचंदजी कस्बे में जैनधर्म से प्रभावित होकर 25 बैरवा परिवारों ने जैनधर्म अपनाया। बैरवा मोहल्ला में विगत दिनों शुद्ध साधना शिविर का आयोजन किया गया था; जिसमें डॉ. प्रियंकरजी जैन हिंगोली के प्रवचन हुये। इसके समापन पर जैनसमाज के लोगों ने कस्बे के मुख्यमार्गों से भगवान महावीर की भव्य रैली निकाली। रैली को तहसीलदार नत्थूसिंह बैरवा ने हरी झण्डी दिखाकर रवाना किया।

दिगम्बर जैन बैरवा समाज गुढ़ाचन्दजी के प्रतिनिधि श्री श्रवणलाल बैरवा व अध्यापक सुखराम बैरवा ने कहा कि जैनधर्म मुनष्यों को दास नहीं, बल्कि परमात्मा बनने का मार्ग बताता है, जबकि विश्व के अन्य धर्म मनुष्य को दास बनाकर भक्ति करना सिखाते हैं। जैनधर्म में किसी भी जाति को उच्च अथवा निम्न नहीं माना गया है। इन्हीं बातों से प्रभावित होकर लगभग 150 सदस्यों ने इस कार्यक्रम में हिस्सा लिया एवं जैनधर्म अपनाया।

यहाँ बैरवा मोहल्ले में भगवान महावीर का मन्दिर भी है। समारोह में भरतपुर, जयपुर, कुम्हेर, जुरेहरा, फरीदाबाद आदि स्थानों से साधर्मी पधारे थे। ●

हार्दिक बधाई

1. श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के स्नातक एवं प्राचीन भारतीय भाषाओं के मनीषी विद्वान डॉ. सुदीप जैन, दिल्ली को 6 दिसम्बर, 2005 को राष्ट्रपति भवन में आयोजित भव्य समारोह में महामहिम राष्ट्रपति डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम द्वारा **महर्षि बादरायण व्यास** सम्मान से पुरस्कृत किया गया। पुरस्कार में एक लाख की धनराशि, शॉल एवं प्रशस्ति-पत्र समर्पित किया गया।

2. जैनदर्शन के मनीषी विद्वान डॉ. भागचन्दजी भास्कर नागपुर को पाली, प्राकृत में निपुणता तथा शास्त्रीय पाण्डित्य के लिये 6 दिसम्बर ही को राष्ट्रपति डॉ. अब्दुल कलाम द्वारा पुरस्कृत किया गया, जिसमें आजीवन 50 हजार रुपये प्रतिवर्ष की धनराशि व प्रशस्तिपत्र से अभिनन्दन किया गया।

आप दोनों को जैनपथप्रदर्शक समिति की ओर से हार्दिक बधाई ! **ह्न प्रबन्ध सम्पादक**

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

04 से 09 फरवरी, 2006	**कोटा**	**पंचकल्याणक**
11 से 17 फरवरी, 2006	**श्रवणबेलगोला**	**महामस्तकाभिषेक**
27 व 28 फरवरी, 2006	**दिल्ली**	**युनिवर्सिटी**
14 से 16 अप्रैल, 2006	**दिल्ली**	**गुरुदेव जयन्ती**
26 से 29 अप्रैल, 2006	**देवलाली**	**गुरुदेव जयन्ती**
09 से 26 मई, 2006	**देवलाली**	**प्रशिक्षण-शिविर**
26 मई से 16 जुलाई, 06	**विदेश**	**धर्म प्रचारार्थ**
23 जुलाई से 1 अगस्त,06	**जयपुर**	**शिक्षण-शिविर**
04 से 09 अगस्त, 2006	**लंदन**	**पंचकल्याणक**
20 से 26 अगस्त, 2006	**मुम्बई**	**श्वेताम्बर पर्यूषण**

जैनपथप्रदर्शक (पाक्षिक) फरवरी (प्रथम) 2006
RJ / J. P. C / FN-064 / 2006-08

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा,** डबल एम.ए. जैनविद्या व धर्मदर्शन तथा इतिहास, नेट एवं **पण्डित जितेन्द्र वि.राठी,** साहित्याचार्य
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., एम. आई. रोड, जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, ए-4, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो कृपया निम्न पते पर भेजें -
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
तार : त्रिमूर्ति, जयपुर **फैक्स :** 2704127